शोध साहित्य SHODH SAHITYA
INTERNATIONAL PEER REVIEWED E-RESEARCH JOURNAL
(समसामयिक विषयों पर केंद्रित बहुविषयक मासिक ई-शोध पत्रिका)
E-ISSN 2584-2447
Impact Factor – SJIF 2024 = 3.621
Vol -2
Issue -2
December
2024

समकालीन कविताओं में आज का सामाजिक परिदृश्य

डॉ. आशीष कुमार तिवारी
प्राध्यापक - हिंदी विभाग
श्री कृष्णा विश्वविद्यालय, छतरपुर (म.प्र.)

शोधसार

समकालीन परिस्थिति में समाज और उसकी दशा और दिशा दोनो ही हमारे सामने है। वास्तव में आज का समय समाज में वैश्वीकरण का है, जिसके कारण से सारा संसार एक छोटे से घर की तरह सिमट गया है। पूरी दुनिया आदमी के मुट्ठी में आज कैद है। आज मानव मशीन बन गया है और उसने मशीन की तरह ही अपनी जिन्दगी को ढाल लिया है। उसके उठने-बैठने, चलने-फिरने, खाने-पीने, सोने-उठने यहाँ तक कि उसके सोचने-समझने में भी मशीन का प्रभाव दखल करने लगा है। वर्तमान में चूंकि उसकी सोच और मनोभावों पर भी यह असर दिखाई देता है, जिसे हम समाज के प्रति उसका राग और अनुराग में आंकलन कर सकते हैं।

आज समाज में जिस प्रकार गला काट प्रतियोगिता चल रही है, उसके चलते कोई किसी से पीछे नहीं रहना चाहता। सभी इस दौड़ मे शामिल हैं और परिणाम में सभी अपनें को प्रथम पायदान पर देखना चाहते हैं। इसका ही प्रतिफल है कि समाज में आज संवेदना मरती जा रही है, सभी एक दूसरे को पीछे धकेलने में लगे हैं। कोई गिर रहा है, कोई मर रहा है तो हमें इससे क्या? हमें तो आगे बढ़ने का अवसर मिल रहा है और यही बात समकालीन कविताओं में प्राप्त होती है, जिसमें समाज के इस भयावह रूप को रचनाकार हमारे सामने प्रस्तुत करने का प्रयास करते हैं।

बीजशब्द

मानवता, आंकलन, व्यवस्थाएं, संवेदनाएं, आस्थाएं, परम्पराए।

भूमिका

समकालीन कविता में स्त्री विमर्श, दलित विमर्श की ही भांति आदिवासी विमर्श भी अपनी अस्मिता और अधिकारों को लेकर संघर्ष कर रहा है। आदिवासी चिंतन आदिवासियों का तथाकथित सभ्य समाज के प्रति मुखर विरोध का स्वर है जिसके मूल में विसंगतियों के प्रति

शोध साहित्य SHODH SAHITYA
INTERNATIONAL PEER REVIEWED E-RESEARCH JOURNAL
(समसामयिक विषयों पर केंद्रित बहुविषयक मासिक ई-शोध पत्रिका)
E-ISSN 2584-2447
Impact Factor – SJIF 2024 = 3.621
Vol -2
Issue -2
December
2024

प्रतिरोध का भाव है। आदिवासी कविता का मूल स्वर जल, जंगल, जमीन की पीड़ा है जिस पर लगातार अत्याचार, अपमान, शोषण हो रहा है। वे लगातार अपनी परम्परा, संस्कृति, भाषा, बोली, लिपि को बचाने की जद्दोजहद कर रहे हैं। अनुज लुगुन आदिवासी समस्याओं पर बड़ी तटस्थता और यथार्थता के साथ उनका पक्ष रखते हैं।

शोध विस्तार

आज का समय अनेंक विसंगतियों से भरा हुआ है, ऐसे में समाज में आज मानवता के खिलाफ विरोधा भाषी परिस्थितियों का निर्माण हो रहा है, अनेंक समस्याएं अपना सिर उठाने लगी है और वह समाज में समाज विरोधी कार्य करने लगे हैं। अनेंक गहरी और जटिल समस्याएँ इतिहास में व्याप्त हो रही है, उनमें हैं-वैश्विक रूप में बढ़ता आतंकवाद का कहर, देश के अंदर फैल रहा नक्सलवाद का जहर, आरक्षण की समस्याएँ, प्राकृतिक समस्याओं में जल का संकट, प्रदूषण एवं पर्यावरण की समस्याएं, सही शिक्षा नीति की समस्याएं, राजनैतिक प्रदूषण, पूंजीवाद से बढ़ती असमान आर्थिक नीति, असमान सामाजिक व्यवस्थाएँ आदि और इन सभी समस्याओं से हमें कहीं न कहीं दो चार होना ही पड़ता है, ऐसे में समाज के प्रति जवाबदेह व्यक्ति, विचारक चिंतक, कवि, समालोचक साहित्यकार एवं समाज सेवकों का इन पर अपना ध्यानाकर्षण करना अनिवार्य है और इन सभी को अपने स्तर पर आवाज उठाने की आवश्यकता है। आज का रचनाकार यह जानता है कि समाज में किस प्रकार वर्तमान में आपा-धापी मची हुई है, किस तरह लूट मची है। लोग एक दूसरे को धोखा दे रहे हैं, कैसे एक दूसरे के साथ विश्वासघात कर रहे है। चूंकि वह यह सब जानता है इसलिए अपनी रचनाओं में इन्हीं सब बातों का उल्लेख कर अपनी चिंता व्यक्त करता है -

''उज्जयिनी में भेस बदलकर घूम रहा बेताल।
नये-नये विक्रम को ढूंढे उनको रोज तलाशे।।
वाग्जाल में उलझाकर वह हर विक्रम को फॉसे।
उनके सिर के टुकड़े कर दे और खींच ले खाल।।''[1]

पूंजीवादी दानव ने हमारी आस्थाओं, परम्परा और हमारे नैतिक आदर्शों को एक-एक कर लीलना शुरू कर दिया है, अर्थवादी इस युग में लोग पैसे के पीछे भाग रहे हैं, अकूत धन कमाने की जुगत में लोग उनके हितों पर भी कुठाराघात करने लगे हैं,जिनका पूरा जीवन उन पर ही आश्रित है, एक मेहनतकश दिहाड़ी मजदूर, रिक्शा खींचकर आजीविका कमाने वाला एक गरीब व्यक्ति, किसी दफ्तर में छोटी सी तनख्वाह से परिवार पालने वाला चपरासी अथवा

एक राजमिस्त्री किस हालत में है और किस तरह जी रहे हैं यह देखने की किसी को फुर्सत नहीं है, बात यहीं खत्म हो जाती तो गनीमत थी मौका मिलते ही लोग उनका भी हक मार लेते हैं। कवि इसी बात को अपनी रचना में उजागर करने की कोशिश करता है –

दिन भर मेहनत खूब करता है, बहुत पसीने बहाता है शाम ढले घर को आता है।
पत्नी भोजन की थाली लाती है, थाली में बेबसी और रूखा-सुखा ही रह जाता है।।[2]

समकालीन कविता में सामाजिक बोध को समय की माँगों के अनुरूप उभरते हुए देखा जा सकता है जिसने मनुष्य को उसके दायित्वों के प्रति बोध कराया। समकालीन कविता की प्रमुख विशेषता जनपक्षधरता रही है। मानव जीवन को उसकी सम्पूर्णता में स्वीकार करने और उसके जीवन की समस्याओं को गहरे भावबोध के साथ स्पष्ट करना समकालीन कविता की प्रमुख पहचान रही है। अपने समय एवं समाज से संघर्ष करना और फिर उस पर प्रश्न खड़े करना समकालीन कविता को मानव जीवन के प्रति सकारात्मक बनाता है। आम जन जीवन की पीड़ा, लोक की संस्कृति तथा मानव के चरित्र को विभिन्न रूपों में देखने का कार्य समकालीन कविता ने किया है। चाहे सत्ता को कठघरे में खड़ा करने की बात हो या मानव अस्मिता का प्रश्न हो, स्त्री, दलित और आदिवासी सभी वर्गों एवं पक्षों की अस्मिता का प्रश्न हो, समकालीन कविता ने अपनी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है। जीवन व जगत के हर पक्ष को देखने की यह विविधता ही समकालीन कविता को जीवंत बनाती है। जमाने में हवा की तासिर को देखकर प्रसिद्ध आलोचक डॉ.नामवर सिंह जी का बयान है -

''क्षमा मत करो वत्स, आ गया दिन ही ऐसा।
ऑख खोलती कलियॉ भी, कहती हैं पैसा।।''[3]

आज समाज में मानवता और सामाजिकता का कोई मूल्य नहीं रहा है तो केवल पैसे का ही महत्व रहा है। प्रत्येक स्थान पर पैसा पूजित है इसके सामने सब कुछ बौनी है और इसके बगैर इन्सान कुछ भी नहीं, समाज में वह किसी योग्य नहीं है। पैसे की आज बड़ी अहमियत है इसीलिए आज के संदर्भ में हवाओं में भी पैसे का सरगम सुनाई देता है। समकालीन समय में परिस्थितियॉ इस तरह बदल गयी है कि आज आदमी को आदमी से खतरा का अहसास होने लगा है। आज के संदर्भ में आदमी के पास से मानवता खत्म होते नजर आ रही है और वह अपने लाभ के लिए किसी को भी हानि पहुंचाने में तनिक भी हिचक महसूस नहीं करता है। आज कवि इन्हीं बातों का उल्लेख करते हुए कहता है कि एक समय वह था जब इन्सान

पशुओं के बीच भी सुरक्षित रह लेता था और एक आज का समय है जब इन्सान-इन्सान के बीच असुरक्षित है -

''पशुओं के बीच जितना सुरक्षित रहा, एक समय आदमी।
उससे कई गुना ज्यादा असुरक्षित है आज, आदमी के बीच आदमी।।"[4]

खून-खराबा, अस्ला-बारूद, बम-धमाके, विध्वंस, नरसंहार, आये दिन मासूमों और बेकसूर लोगों की हत्याएं, आतंकवाद एक खूंखार चेहरा है जो मानवता के लिए नासूर है। सारे विश्व में आज इसका डर बैठ गया है और हर कहीं पर जहाँ आतंकवाद है वहाँ इसकी धमक से कंपन, जलजला उत्पन्न होने लगा है, न जाने कितने मासूमों की बलि इसने ले ली है। इसे अपने सामने अपने और पराये कुछ भी नजर नहीं आते, यह तो केवल खून का प्यासा है, जो खून का लाल रंग देखकर ही खुश होता है। जब इस तरह के नरसंहार को आज का कवि देखता है तब वह पीड़ित शब्दांकन करता है -

"फिर उड़े खून के छींटे, फिर मचा हाहाकार
फिर थोड़ी चीख पुकार
फिर अधनंगी देह को छलनी करती गोलियाँ
फिर तिरंगे में लिपटे कुछ शव
फिर चौराहे पर जली मोमबत्तियाँ
फिर कुछ मौन और शोर मचाती रैलियाँ।"[5]

नक्सलवादी आतंक के इस स्वरूप से केवल मानवता ही नहीं कांप रही बल्कि प्रकृति भी थर्रा रही है और वह भी इनके डर से अपने आसपास के लोगो के बीच में इस भयानक विषय पर चिंता प्रकट करती है और उसकी इस चिंता और चिंतन को कवि अपने शब्दों में कुछ इस तरह कहता है -

"बड़ी देर तक महुआ रोया, सुबक उठी कचनार।
उस दिन जिस दिन विस्फोटो से दहला चिंतलनार।।
सरई बोला, इमली मौसी इतना तो बतलाओ।
इसके पीछे क्या है, इसका मतलब तो समझाओ।।
किस कारण से हुआ यहाँ पर भीषण नरसंहार।''[6]

शोध साहित्य SHODH SAHITYA
INTERNATIONAL PEER REVIEWED E-RESEARCH JOURNAL
(समसामयिक विषयों पर केंद्रित बहुविषयक मासिक ई-शोध पत्रिका)
E-ISSN 2584-2447
Impact Factor – SJIF 2024 = 3.621
Vol -2
Issue -2
December
2024

समाज में आज किस तरह से लोग स्वार्थी होते जा रहे हैं। स्वार्थ लिप्सा में फंसे आज के परिवेश में किस तरह आदमी का आदमी के प्रति व्यवहार बदल रहा है, इसे कवि अपने अनुभवों के द्वारा महसूस किये व्यवहारों पर अपनी बात करता है –

"प्रश्न भरे ये दिन है मेरे, प्रश्न भरी ये रातें।
किसको कहें भला हम अपना, किससे दिल की बातें।।''[7]

समकालीन समाज में बढ़ते पूंजीवाद की समस्या एक ओर अमीर का और अमीर होते जाना और दूसरी ओर सर्वहारा वर्ग का और दमित होना समाज में विरोधाभास की स्थिति निर्मित कर रही है। इसके चलते वर्ग संघर्ष बढ़ने लगा है और अपने अधिकारों की रक्षा के लिए दोनो आमने-सामने होने लगे हैं। समाज में सर्वहारा की बढ़ती समस्याओं के लिए कवि का शब्द है-

"मीलो लम्बा सफर, योजनों लम्बा जीवन है।
लेकिन उसके साथ भ्रमित पंथी जैसा मन है।।
गलत पते के खत से, भटक रहे हैं इधर-उधर।''[8]

वर्तमान समय बदल रहा है और नयी-नयी चुनौतियाँ हमारे समक्ष आ रही हैं ऐसे में कवि कर्म और कविता दोनों का दायित्व बढ़ जाता है। कवियों की एक लंबी परम्परा जो वर्षों से साहित्य और समाज को एक दिशा दिखाने का काम कर रही रही थी उसका दीप एक के बाद एक लगातार बुझ रहा है। राजेश कुमार मानस कहते है -

"चिथड़ों में लिपटी जिन्दगी अपनी।
मेहनत को ही पूजा हमनें माना है।।
न सर पर छत, न ही कोई निष्चित ठीकाना है।
फिर भी जीये जा रहे हैं हम मेंहनतकश।।"[9]

नारी-विमर्श पर आज बहुत चर्चाएं हो रही है। बहुत से संदर्भों में स्त्री-विमर्श की बातें की जा रही है। अनेंक मंचो और सभाओं में इस मुद्दे पर विचार हो रहे हैं। कवियों ने इस संदर्भ पर अपनी बात इन पंक्ति से कहा है –

''इच्छाऐं दबाकर, बदलकर स्वभाव को, जैसे ससुराल में पसंद था
रोगों को झेलकर, दिखलाकर, सगुन चार बच्चे पैदा किए।''[10]

शोध साहित्य SHODH SAHITYA
INTERNATIONAL PEER REVIEWED E-RESEARCH JOURNAL
(समसामयिक विषयों पर केंद्रित बहुविषयक मासिक ई-शोध पत्रिका)
E-ISSN 2584-2447
Impact Factor – SJIF 2024 = 3.621
Vol -2
Issue -2
December
2024

समकालीन कविता किसी वाद से मुक्त नजर आती है उसमें कई विचारधाराओं, सिद्धांतों तथा जीवन के पहलुओं का समन्वय देखने को मिलता है। आलोक धन्वा अपनी कविताओं में जितनी स्वच्छंदता से प्रेम को दर्शाते हैं उतनी ही बेचैनी के साथ लोक क्रांति को भी। वे पूरी ताकत के साथ सत्ता और व्यवस्था पर प्रश्न खड़ा करते हैं –

"डोल उठा आसन सा, जीवन का रंगमंच।
नारी ने पुरूष से,सीख लिया हर प्रपंच।।
सत्ता की किरणों से,रंग हुए परिवर्तित।
सबने यह समझा कि, भद्राएँ बदल गईं।।"[11]

बदलते परिवेश के साथ बदलते हालात् और बदलती व्यवस्थाओं को देखकर ही आज का कवि कहता है कि अब समाज के भले और बूरे पर अपनी पैनी नजर रखने वाले और उन पर कुठाराघात करने वाले चिंतकों की स्थिति भी बदल गई है। अब समाज के वे पहरेदार, सचेतक बूढे हो गये हैं और साथ ही महत्वहीन भी –

"संत और सेठ, दोनो का चेहरा गोल है।
शंकर हो मार्क्स, दिदरो या चार्वाक।।
बचकाने लगते हैं, मेरे जमानें में।"[12]

जब समाज के सचेतक जिनसे समाज में चेतना जागृत होती है ऐसी स्थिति में पहुँच जाते हैं तब निष्चित ही समाज में स्वेच्छाचारी स्वभाव का फैलाव हो जाता है और लोग अपने ही किये हुए कार्य को उचित मानने लगते हैं। वह अपने को सही सिद्ध करने में लगा रहता है और जब इस तरह के माहौल बनते हैं तब तक सबकुछ अव्यवस्थित हो जाता है ऐसे में कवि चित्रित करता है –

"जहाँ तेरा वुजूद किस्तों में बिकता है, बावला है रे, जो कविता लिखता है।
गरीबों के लिए बिक, बेकारी के लिए बिक, मंहगाई के लिए बिक।।
बच जाये जिन्दा तो कविता लिख।"[13]

समकालीन कविता कवियों की अपनी देखी, परखी अनुभवों की, उनके द्वारा भोगे गये समय के साथ सुख-दुख, हंसी-खुशी, अच्छे-बुरे सभा के पल-पल की बातों का एक जीवित दस्तावेज है, जो उनके साथ-साथ समाज के अन्य लोगो, व्यवस्थाओं, काल-घड़ी-चक्र में घटित होने वाली तथा हो रही घटनाक्रमों का रोजनामचा है। आज समाज में जन मानस के बीच

शोध साहित्य SHODH SAHITYA
INTERNATIONAL PEER REVIEWED E-RESEARCH JOURNAL
(समसामयिक विषयों पर केंद्रित बहुविषयक मासिक ई-शोध पत्रिका)
E-ISSN 2584-2447
Impact Factor – SJIF 2024 = 3.621
Vol -2
Issue -2
December
2024

आमजन की पीड़ा, तकलीफ, बेबसी, आंसू, लाचारी सारा कुछ जो भी घट रहा है कवि को दिखाई देता है और वह अपनी रचनाओं में उन आमजनों की पीड़ा को स्वर देता है। वह देशकाल परिस्थिति के अनुसार देश में हो रहे सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक, पारिस्थितिक और मनोवैज्ञानिक बदलावों पर भी अपनी बात कहता है और समय चक्र के साथ प्रकृति, बसंत, धरती, माटी और पर्यावरण पर अपनी चिंता प्रकट करता है। समकालीन कविता में कवि अपने परिवेश, मानव समुदाय और उसके क्रियाकलापों का उल्लेख करता है –

"कुछ समीप की, कुछ सुदूर की।
कुछ चंदन की, कुछ कपूर की।।
कुछ में गेरू, कुछ में रेशम, कुछ में केवल जाल।
ये अनजान नदी की नावें, जादू के से पाल।।"[14]

समकालीन हिंदी कविता निरंतर गतिशील है। तत्कालीन समय में जब देश में लोकतंत्र और उसकी राजनीति को लेकर बहस चल रही है ऐसे में समकालीन कविता पूर्ण आवेग के साथ रूप, संवेदना, भाव, दृष्टि आदि में आम जन का नेतृत्व करते हुए दिखाई पड़ती है। समकालीन कविता अपने परिवेश में आत्मगत न होकर बाह्य जगत को आत्मसात करती है। एक तरह से उसका झुकाव जनपक्षधरता की ओर है। यही कारण है कि कवियों में समाज के विरोधी तत्त्वों के प्रति प्रतिकार का स्वर सुनाई पड़ता है तभी तो राष्ट्रकवि माखनलाल चतुर्वेदी लिखते हैं –

"समय के समर्थ अश्वमान को, आज बंधु चार पांव ही चलो।
छोड़ दो पहाड़ियां, उजाड़ियां, तुम उठो कि गांव-गांव ही चलो।।"[15]

निष्कर्ष

निष्कर्ष स्वरुप हम यह कह सकते है कि समकालीन हिंदी कविता निरंतर गतिशील है। तत्कालीन समय में जब देश में लोकतंत्र और उसकी राजनीति को लेकर बहस चल रही है ऐसे में समकालीन कविता पूर्ण आवेग के साथ रूप, संवेदना और भाव आदि का नेतृत्व करते हुए दिखाई पड़ती है। समकालीन कविता अपने परिवेश में आत्मगत न होकर बाह्य जगत को आत्मसात करती है। एक तरह से उसका झुकाव जनपक्षधरता की ओर है। यही कारण है कि कवियों में समाज के विरोधी तत्त्वों के प्रति प्रतिकार का स्वर सुनाई पड़ता है। जब हम अपनी सदी की ओर कई प्रश्नों, आशंकाओं और संभावनाओं से देख रहे हैं तो निश्चित तौर पर समाज से हमारी उम्मीदें बढ़ जाती है। समकलीन कविता ने सामाजिक बोध को समय की मांग के

अनुरूप मनुष्य का उसके दायित्वों के प्रति बोध कराया है। समकालीन हिंदी कविता का परिदृश्य 'देखा है' की जगह एक शामिल आदमी की कविता है इसमें 'मैं' की जगह 'हम' की उपस्थिति है।

संदर्भ ग्रंथ

1. मन बंजारा / डॉ.अजय पाठक / पृष्ठ-19.
2. वह काला सा आदमी / राजेश कुमार मानस ''श्याम'' / पृष्ठ-39.
3. आजकल (हिन्दी मासिक) अक्टूबर 2016, नामवर सिंह विशेषांक पृष्ठ-21.
4. कालचित्र / प्रयास जोशी / पृष्ठ-06.
5. अक्षर पर्व-मासिक, फरवरी 2015, सच्चिदानंद जोशी / पृष्ठ-39.
6. गीत मेरे निर्गुणियाँ / डॉ.अजय पाठक / पृष्ठ-106.
7. किसको कहें भला हम अपना / डॉ.विनय कुमार पाठक / पृष्ठ-50.
8. आजकल (हिन्दी मासिक) सित.1991 / जहीर कुरैशी / पृष्ठ-8.
9. वह काला सा आदमी / राजेश कुमार मानस ''श्याम'' / पृष्ठ-30.
10. आजकल (हिन्दी मासिक) मार्च-1991 / रघुवीर सहाय / पृष्ठ-12.
11. नये पाठक- त्रैमासिक- अक्टूबर-दिसम्बर 2009 / मुकुंद कौशल / पृष्ठ-24.
12. महास्वप्न का मध्यांतर / कैलाश बाजपेयी / पृष्ठ-09.
13. किस पर लिखूँ कविता / डॉ.सुरेन्द्र दुबे / पृष्ठ-13.
14. आजकल (हिन्दी मासिक) दिसम्बर 1991- डॉ. धर्मवीर भारती, पृष्ठ-5.
15. आजकल (हिन्दी मासिक) दिसम्बर-1991- माखन लाल चतुर्वेदी, पृष्ठ-4.